INDEX

NAME : GEETANJALI COLLEGE : JHANKAR COLLEGE of EDU. SEC : A Roll No. : 39

S. No.	Date	Title	Page No.	Teacher's Remarks/Sign.
01.		कला शिक्षा का अर्थ	01-04	
02.		शिक्षा और कला	05-07	
03.		भारतीय चिन्तन में अभिनय	08-11	
04.		नाट्य कला	12-15	
05.		कला एवं संगीत शिक्षा	16-19	
06.		स्वर	20	
07.		गायन और गायन के प्रकार	21	
08.		भारतीय नृत्य	22	
09.		शास्त्रीय नृत्य	23	

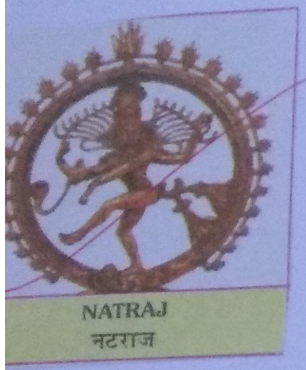

NATRAJ
नटराज

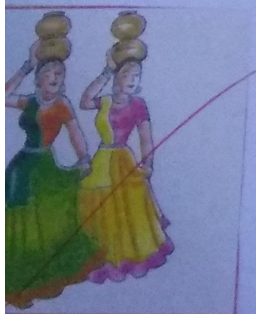

DANCE (GUJARAT)
नृत्य (गुजरात)

कला शिक्षण का अर्थ एवं सम्प्रत्यय

कला शिक्षण का अर्थ :-

'कला' संस्कृत भाषा का शब्द है। कुछ लोग कला शब्द का अर्थ 'सुन्दर' 'कोमल', 'मधुर' या 'सुख' लाने वाला'। मानते हैं। कुछ इसे 'कल' धातु अर्थात (शब्द करना, बजना, गिनना) से सम्बन्धित मानते हैं। कुछ अन्य लोग इसे 'कड़' धातु (मदमस्त करना, प्रसन्न करना) से जोड़ने के पक्ष में हैं। कुछ विद्वान इसे 'क' अर्थात आनन्द का लाने वाला मानते हैं। संस्कृत साहित्य में 'कला' शब्द का प्रयोग लगभग 20 अर्थों में हुआ है।

ब्रह्मा द्वारा रचित इस सृष्टि में किसी भी देश की संस्कृति का सम्यक ज्ञान वहाँ की ललित कलाओं से होता है। भारत की ललित कलाओं का अपना अलग महत्व है। ललित कलाओं को दो भागों में विभाजित किया है। - दृश्य एवं श्रव्य कला। दृश्य कला के अन्तर्गत, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, व्यावसायिक कला, छापाकला, छायांकन आदि आते हैं तथा श्रव्य कला के अन्तर्गत गायन, वादन, नृत्य, रंगमंच आदि आते हैं।

कला :-

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
मांगल्य प्रथमं चैतद् गृहे यत्र प्रति-ष्ठतम् ।।

चित्रकला सभी कलाओं में श्रेष्ठ है। यह धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष देने वाली है। जिस घर में इसकी प्रतिष्ठा की जाती है, वहाँ पहले ही मंगल होता है।

यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां यथाण्डजानां गरुड़ः प्रधानः ।
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः ।

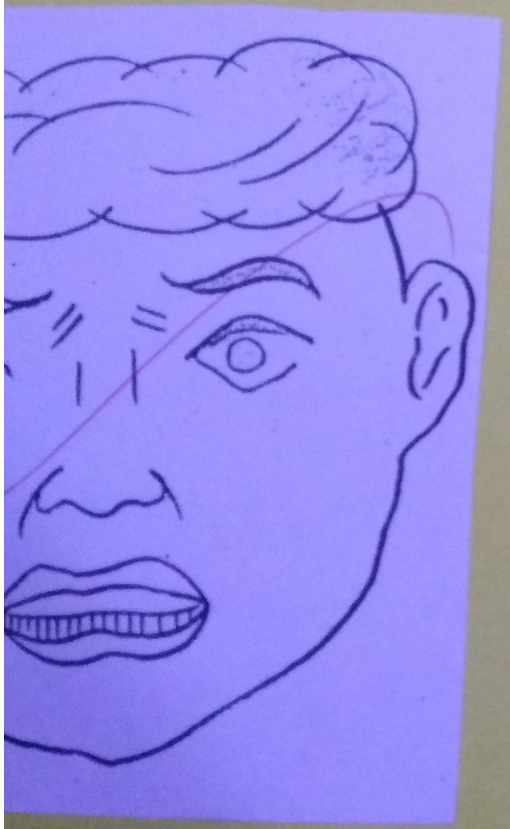

FEAR

जैसे पर्वतों में सुमेरु श्रेष्ठ हैं, पक्षियों में गरुड़ प्रधान हैं और मनुष्यों में राजा उत्तम हैं उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला उत्कृष्ठ हैं।

शिक्षा में कला- सैक्सेना :-

कला एक अत्यन्त व्यापक शब्द हैं। प्राचीन काल से भारतीय भाषाओं में कला एवं इससे भी पूर्व या यूँ हैं कि प्राचीनतम काल से शिल्प शब्द का प्रयोग हो रहा हैं। अंग्रेजी भाषा में आर्ट शब्द का प्रयोग तेरहवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ, जिसका अर्थ बनाना, उत्पन्न करना या ठीक करना हैं।

प्रारम्भ में इसके स्थान पर कौशल शब्द का प्रयोग किया जाता हैं और शारिरिक या मानसिक कौशल का प्रयोग करके जब किसी कार्य में कृत्रिम निर्माण किया जाए तो वह कला माना जाता था। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में कला शब्द का प्रयोग लगभग ललित कला के स्थान पर किया गया हैं। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से पूर्व शिल्प का प्रयोग ही कला के स्थान पर प्रचलित था।

कला की परिभाषाए :-

"वस्तु का रूप सुन्दर बनाने वाली विशेषता ही कला हैं।"

"प्राण तत्व 'रस' से परिपूर्ण रचना ही कला हैं।" - एक साहित्यिक उक्ति

"कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता हैं।" - डॉ. भोलाशंकर तिवारी

"ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का संकुचित रूप जो हमको भाव-बोध के लिए मिलता हैं। - जयशंकर प्रसाद

कला का वर्गीकरण :-

कला का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं। इसकी व्यापकता के आधार पर इसके वर्गीकरण पर अनेक मत हैं। कला की केवल दो श्रेणियाँ हैं:-

1. उपयोगी कला,
2. ललित कला।

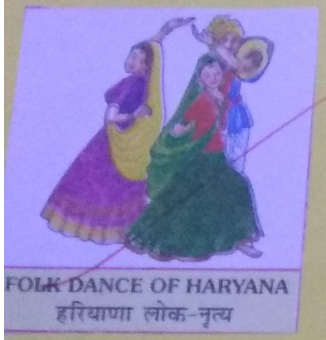

FOLK DANCE OF HARYANA
हरियाणा लोक-नृत्य

उपयोगी कला:-

शिक्षा की दृष्टि से कला को व्यावसायिक कला और उदार कला बताया गया। व्यावसायिक कला के अन्तर्गत रंगाई, छपाई, बढ़ई विधि, मिस्त्री विधि, सुनार आदि और उदार कला के अन्तर्गत संगीत, व्याकरण भाषण आदि माने गये हैं। इस प्रकार कला के वर्गीकरण के आधार उसके स्वरूप -शिक्षा के दृष्टिकोण, मूर्तता और अनुकरण आदि माने जाते हैं। अनुकरण में चित्रकला प्रथम आती है। चित्रकार जो कुछ भी देखता है, अनुभव करता है, उसी की अभिव्यक्ति करता है।

ललित कला की परिभाषा:-

वह कला जो कलाकार की मौलिक रचना हो तथा जो उससे पहले न कभी की व न कभी देखी। ललित कलाओं का एक विशेष विभाजन मात्र है जिसके अन्दर कुछ चुने हुए शिल्प या कलाएँ रखी गयी हैं, जैसे- चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, काव्य या नृत्य आदि। इसमें मुख्यत: कलाएँ सम्मिलित की जाती हैं, जिनका काम कोई जीवनोपयोगी सामान बनाना नहीं बल्कि जिनका केवल मात्र प्रयोजन देखकर सुनकर या पढ़कर मन को आनन्द प्रदान करना ही होता है। वास्तव में कला का वर्गीकरण उसके गुण, मूल्य और उपयोग के आधार पर ही मूलत: किया जाता है। आधुनिक कला में उसी कला को सबसे अधिक ऊँचा स्थान दिया जाता है, जो जितना विलक्षण, नवीन रूप उपस्थित कर सके। पूर्णत: नवीन सृष्टि हो प्रकृति से हटकर हो, ऐसी क्षमता वाली कला को सर्वोत्तम स्थान दिया जाता है और उसी के आधार पर कला का वर्गीकरण किया जाता है।

परम्परागत भारतीय दृष्टि से कला व शिल्प में कोई अन्तर नहीं, क्योंकि गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख आदि भी कलाओं के साथ माला-सिया सजाना आदि नृत्य, संगीत, मूर्ति तथा चित्र को मात्र कौशल एवं छन्दों द्वारा निर्मित कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण एवं उच्च स्थिरीय

ANGER

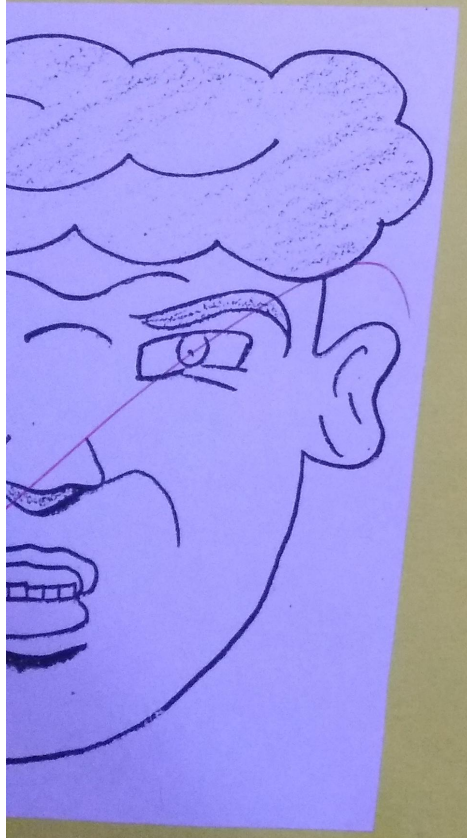

University Roll No. ....

माना जाने लगा था। सम्भवत इनमें बौद्धिकता के समावेश से ही इन्हें उच्च माना जाता था। इस प्रकार विकसित कला उच्च एवं श्रेष्ठ कला कहलायी और अन्य कलाएँ दस्तकारी (शिल्प) कहलायी।

मोनियर विलियम के अनुसार:-

"अपने संस्कृति कोष में भारतीय दृष्टिकोण से कला के दो भेदों का वर्णन किया गया है, जिसका आधार कला को गोपनीय और अगोपनीय माना है"।

1. बाह्य कला :- बढ़ईगीरी, सुनारगीरी और वास्तुकला आदि इसके अन्तर्गत आती है।

2. आभ्यन्तर कलाएँ :- इसके अन्तर्गत आलिंगन आदि कला आती हैं।

यूरोपीय दृष्टि से कला का विभाजन -

कला के वर्गीकरण एवं कला पर विचार करने का प्रारम्भ यूरोप में यूनान के प्लेटो ने दार्शनिक दृष्टिकोण से कला को सत्य की प्रतिकृति माना। साथ ही काव्य को संगीत के अन्तर्गत मानकर कला के विभाजन और वर्गीकरण का श्रीगणेश किया।

कला के सम्बंध में सर्वप्रथम अरस्तू ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए थे - "केवल धनी लोग जिनके पास फालतू समय है और आवश्यकता से अधिक धन है वह अपने चारो ओर व्यर्थ की वस्तुएँ जिन्हें वह सुन्दर कहते हैं, सजा रखते हैं तथा उनसे सुख की अनुभूति करते हैं।" किन्तु साधारण मजदूर उन्हीं वस्तुओं का तयौम कर सकता है जो उसके उपयोग के लिए हों। अरस्तु ने आगे चलकर उपयोगी कला और ललित कला के रूप में दो भेद माने और इसी क्रम में पुन आगे चलकर कला के विभिन्न विभाजन किये गये।

1. रूप के स्थान पर

(क) स्थान पर- आधारित या रूप पर आधारित जैसे - मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला आदि।

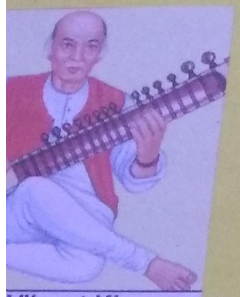

University Roll No. ....

(ख) मति पर आधारित जैसे - संगीत एवं काव्य कला आदि।

2. इन्द्रियों के आधार पर

(क) आँख से रसास्वादन होने वाली ललित कलाएँ, जैसे - मूर्तिकला, चित्रकला आदि

(ख) कान से आस्वादित होने वाली कलाएँ जैसे - संगीत एवं काव्य आदि।

हीगेल के अनुसार :-

"जड़ तथा चेतन सामग्री की मूर्तता तथा विचार की सफल अभिव्यक्ति कला है"

1. इन्होंने काव्य कला को उच्च माना है क्योंकि इसमें बौद्धिक तत्व अधिक सूक्ष्मता से अभिव्यक्त होते हैं और इसका आधार है शब्द एवं अर्थ।

2. संगीत कला - इसका आधार है स्वर एवं लय।

3. चित्रकला का आधार रंग व ब्रश है।

4. वास्तुकला का आधार चूना, मिट्टी आदि है।

शिक्षा और कला :-

शिक्षा और कला बालक के जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है। शिक्षा और कला दोनों ही व्यक्तित्व का संतुलित, सुव्यवस्थित करने वाली विधा है।

इस विवेचन का प्रारम्भ हम 'शिक्षा' शब्द की विवेचना से करते हैं -

शिक्षा शब्द से हम सभी परिचित हैं। आदिकाल से संसार के प्रत्येक भू-भाग में शिक्षा को मानव के विकास का आवश्यक सोपान माना जाता है। शिक्षा का अर्थ यदि हम सामान्य शब्दों में कहें तो संचित ज्ञान को किसी भी माध्यम से किसी को प्रदान करना है।

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता बालक को होती है। बालक किसी भी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर संचालित एवं संरक्षित ज्ञान को अपने मन मस्तिष्क में ग्रहण करता है और फिर

अपने अनुभव, कल्पना, चिंतन तथा अनुभूतियों को जोड़कर उसे विकसित करता है। यह प्रक्रिया पीढ़ी दर-पीढ़ी चलती रहती है। मानव की प्रगति का इतिहास गवाह है कि पहले स्वर फिर शब्द का सृजन हुआ और इन्हीं के माध्यम से मानव अपने अनुभवों को संचित कर उसके माध्यम से विकास की सीढ़ीयाँ चढ़ता चला गया।

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो शिक्षा का अर्थ है कि ज्ञान का हस्तान्तरण अब ज्ञान तो कई माध्यमों से मिल सकता है। प्रकृति ज्ञान का प्रथम स्त्रोत मानी जाती है। प्रकृति की घटनायें, दैनिक क्रियाएँ, परिवर्तन सभी तो मानव को कुछ न कुछ ज्ञान देते हैं।

यही से दृश्य कला एवं शिल्प विजुअल आर्ट एंड क्राफ्ट की भूमिका का आरम्भ होता है। बच्चे की शिक्षा का प्रारम्भ घर से ही होता है; छः माह की उम्र से ही बच्चा रंगों के प्रति आकर्षित होने लगता है और एक वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वह रंगों में भेद करना एवं उन्हें अलग-अलग पहचानना भी प्रारम्भ कर देता है। क्योंकि माँ उसकी प्रथम शिक्षिका होती है। अतः इसी स्तर पर माँ को भाषा के साथ-साथ रंगों के नाम के साथ उनकी पहचान करना अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर लेना चाहिए।

शिक्षा में कला का यही पर सर्वाधिक-न्यूनतम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोग प्रारम्भ हो जाता है।

अब जाहिर कि बच्चा सर्वाधिक निकट खिलौनों से होता है। दो वर्ष की आयु तक माँ के बाद खिलौने ही उसके सर्वाधिक प्रिय एवं निकटतम साथी होते हैं। खिलौने अर्थात् मूर्तिकला बेशक खिलौने मिट्टी के हों, लकड़ी के हो या प्लास्टिक के किन्तु इनका उपयोग एक जैसा है। इन खिलौनों के माध्यम से बच्चा रंग, अनुपात एवं आकार को भली-भांति समझ लेता है। हरा तोता, सफेद गाय, काली बिल्ली

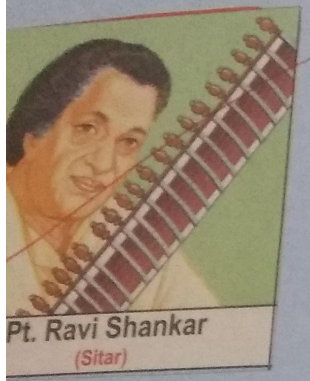

Pt. Ravi Shankar
(Sitar)

University Roll No. ....

था ये गाय के सींग हैं, ये हाथी की सूंड़ है। ये बंदर की पूंछ है। इस तरह के वाक्यों से बच्चा को इन खिलौनों से मूर्तियों के माध्यम से रंगों और अंगों का ज्ञान कराया जाता है। ऊँट सीधा खड़ा है। हाथी टेढ़ा है या बिल्ली तो उल्टी पड़ी है। आदि वाक्यांश और इन्हीं स्थितियों में खिलौनों को रखकर बच्चे को स्थिति एवं अनुपात का ज्ञान कराया जाता है।

एक वर्ष से दो-ढ़ाई वर्ष तक की आयु का बच्चा हर बात को तेज़ी से सीखता है। इस स्तर पर बच्चे को रेखाओं, वृत्त एवं त्रिकोण-चौकोण का ज्ञान मौखिक रूप से कराया जाता है। मूल रंग के साथ-साथ उसके सहयोगी रंगों का ज्ञान भी बालक को कराया जा सकता है।

ढ़ाई वर्ष की उम्र के बाद अत्यन्त तेजी से सीखने की उम्र में प्रवेश कर जाता है। चित्रों वाली किताबें इस क्षेत्र में सर्वाधिक सहयोगी सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती हैं। चित्रों वाली किताबों से बच्चा यह सीखता है कि प्रत्येक आकार का एक नाम होता है और वह आकार किसी वस्तु का होता है। बच्चे के आस-पास जो कुछ भी अस्पष्ट या उसके मस्तिष्क में चित्रित है इसमें से परिचित चीज़ों, वस्तुओं की स्पष्ट पहचान करना वह सीखने लगता है। साधारण आकारों का निर्माण करना भी वह इन किताबों से सीखना प्रारम्भ कर देता है। पाँच वर्ष की उम्र में बच्चा घर, पेड़-पौधे, नदी, पहाड़ आदि बनाने की आरम्भ आसानी से कर सकता है। पाँच से आठ वर्ष की आयु वर्ग का बालक चित्रकला के क्षेत्र में रंगों के शेड्स तैयार करना आसानी से सीख सकता है। इसी प्रकार मूर्तिकला, पात्रकला, शिल्पकला आदि का प्रयोग भी शिक्षा के लिए आसानी से किया जा सकता है।

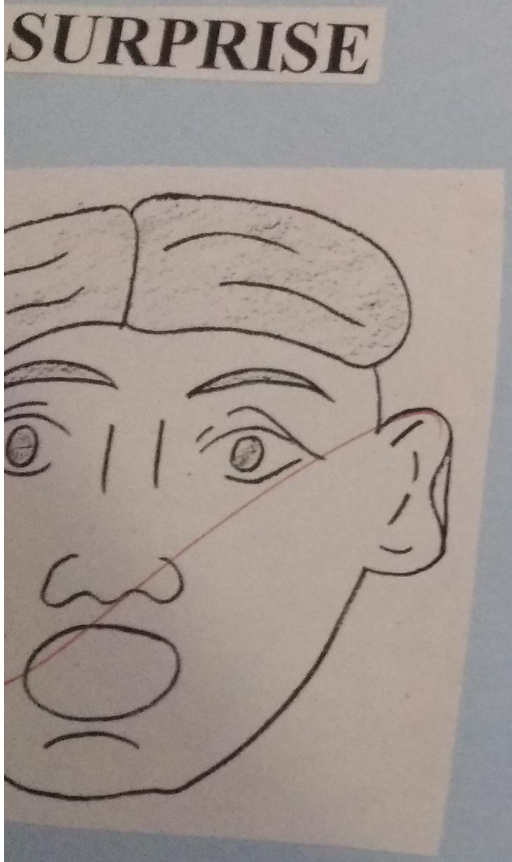

SURPRISE

University Roll No. ....

भारतीय चिन्तन में अभिनय :-

मनुष्य प्रारम्भ से ही प्रकृति का अनुकरण करता रहा है। जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना विकसित हुई, अनुकरण की क्रिया के फलस्वरूप उसके दिमाग में प्रश्न विभिन्न पक्षों में कल्पना का समावेश भी होता गया। फलस्वरूप मानव समाज के कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों को अपनी क्रियाओं में सम्मिलित कर लिया। अनुकरण के विकास में जब अति विकसित स्थिति आ गई तो इसमें सौन्दर्य के तत्व भी शामिल हो गए, जिन्होंने इन प्रस्तुतियों को कलात्मक बना दिया।

अभिनय को सामान्यतः :-

अनुकरण समझ लिया जाता है। यह भ्रम आचार्यों के तवस्थाओं की अनुकृति कहा गया है। भरत के नाटक को तीनों लोकों में जो हो रहा है, उसका अनुकरण बताया है, लेकिन अनुकरण से इनका आशय इस संसार में जो कुछ जैसे हो रहा है उसे उसी रूप में उपस्थित करने से नहीं है।

भारतीय मनीषियों का निश्चित विश्वास है कि हम अँधेरे से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की दिशा में और मृत्यु से अमरता के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। इसी जीवन सृष्टि को लेकर आचार्यों का कहना है कि नाटक का नायक, जिस उद्देश्य को लेकर चलना आरम्भ करता है, अन्त में उसे उसकी संप्राप्ति हो होनी चाहिए।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के आठवें अध्याय में अभिनयशब्द की व्याख्या करते हुए छठवें व सातवें श्लोक में कहा है :- "अभि उपसर्ग पूर्वकनीय धातु से निष्पन्न अभिनय शब्द है जिसका अर्थ है कि यह मुख्य प्रयोजन की ओर प्रयोग को ले जाता है।"

नाट्य में दो प्रकार के धर्मी प्रयुक्त किए गए हैं :-

1. लोक धर्मी
2. नाट्य धर्मी

अभिनय पाश्चात्य अवधारणा :-
पश्चिम में अभिनय के लिए एक्टिंग शब्द का प्रयोग होता है। मूल शब्द है ऐक्ट और उसके करण और अनुकरण दोनों ही अर्थ किये गए हैं। अभिनय में करण अर्थात् करने की भावना को लेकर यह कहा जाता है कि हम दिनभर इस संसार में जो कुछ करते रहते हैं वह अभिनय ही तो है। कभी हम पुत्र, कभी शिष्य, कभी पिता, कभी पति, कभी अध्यापक, कभी अधिकारी आदि की भूमिका का निर्वाह करते हैं।
अभिनय का अर्थ है अनुकरण किया जाना। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति है आर्ट इज मैन प्लस नेचर अर्थात् मनुष्य प्रकृति के साथ अपने को संयुक्त करके कला की सृष्टि करता है। अरस्तू ने इसी विचार को स्वीकार करते हुए लिखा है कि कला इन उद्देश्यों का अनुकरण है जिसकी ओर विश्व प्रकृति अग्रसर हो रही है।

अभिनय के अंग :-
अभिनय रंगमंच के लिए महत्वपूर्ण आयाम है। नाट्य विद्या के नाट्याचार्य अभिनय के पाँच अंग मानते हैं -

1. मुखमुद्रा
2. शरीर भंगिमा
3. गति
4. वेश
5. वाणी

1. मुखमुद्रा :- हमारी सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन हमारी मुखमुद्रा या भाव-भंगिमा है। हम बिना कुछ बोले अपना सिर नीचे, ऊपर, बायें, दायें, इधर-उधर घुमाकर, ऊपर उठाकर, नीचे झुकाकर, अपनी गर्दन नीचे-ऊपर या दायें-बायें करके विभिन्न प्रकार के मनोभावक पक्ष या अर्थ

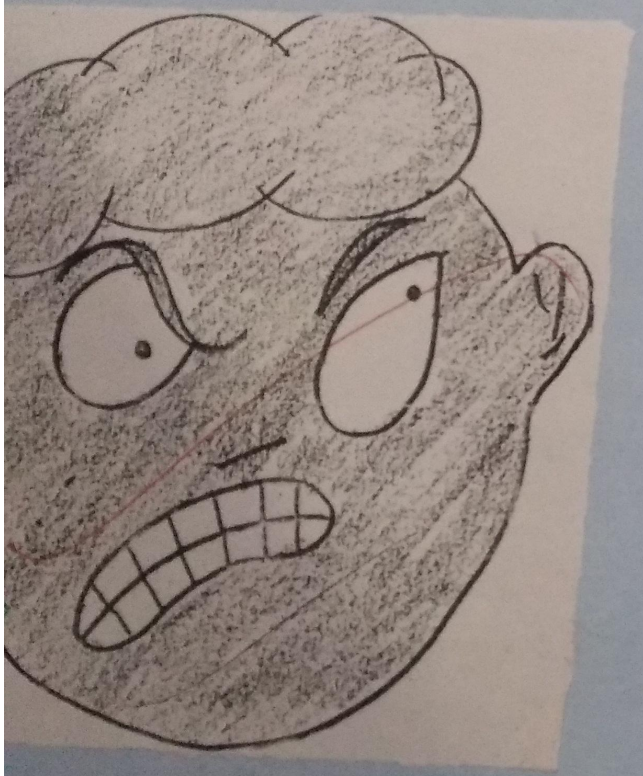

FRUSTRATED

University Roll No. ....

चलाकर होंठ को आगे पीछे फैलाकर या सिकोड़कर या होंठों को दाँतों के नीचे करके या दाँतों से काटकर, गाल फुलाकर या सिकोड़कर विभिन्न मुखमुद्राओं द्वारा स्नेह, क्रोध आदि अनेक प्रकार के भाव प्र उत्पन्न करते हैं। यह भाव प्रदर्शन कभी संवादो के साथ होते हैं तो कभी बगैर शब्दों के। इसी प्रकार गर्दन के ऊपर के विभिन्न अंगों को भाव के अनुसार प्रयुक्त करने को ही भाव-भंगिमा या मुखमुद्रा कहते हैं।

2. शरीर भंगिमा:- जिस प्रकार मुखमण्डल के विभिन्न अंगों के विकार लाकर भावों की अभिव्यक्ति की जाती है उसी प्रकार कन्धे उचकाकर, हाथ उठाकर या गिराकर मुट्ठी तानकर या खोलकर, हाथ फैलाकर या बांधकर, एक हाथ से या दोनों हाथों से या अंगुली से या अनेक अंगुलियों से संकेत करके या अंगुलियां सिकोड़कर, कमर तिरछी या सीधी करके या मटकाकर, आगे को झुककर पैर उठाकर, घुटने टेककर या अनेक प्रकार से शरीर के अंगों का संचालन करके अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियों में तथा भावों के प्रदर्शन में शारीरिक अंगों से विभिन्न प्रकार के भाव प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

3. गति या टैम्पो:- अभिनय में गति का बड़ा महत्व है। प्रत्येक पात्र की भूमिका में अभिनय करने वाले अभिनेता को विभिन्न गतियों में चलना आवश्यक हो जाता है। चोर या हत्यारा दबे पाँव पंजों के बल पर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चलता है कि विदूषक हास्यास्पद गति से टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। गति के अन्तर्गत ही भूमिका के पद और उसकी मर्यादा के अनुसार अभिनेता का रंगमंच पर प्रवेश, प्रस्थान, परिक्रमा, ऊपर चढ़ना या मंच के नीचे उतरना होता है।

4. वाणी (स्पीच):- यूरोपीय नाट्य शास्त्रियों का मत है कि अभिनेता को अपनी वाणी का पूरा अधिकार होना चाहिए। यह उसे मन्द

University Roll No. ....

से तार, कम्पित से स्थिर और गम्भीर मन्द से तीव्र गति होकर साथ ही भावानुसार उतार-चढ़ाव भी दिखा सके। उसकी वाणी इतनी सधी हुई होनी चाहिए कि उसे जिस कार्य की अभिव्यक्ति करनी है, वह अर्थ और भाव उसकी वाणी से ही प्रकट हो जाये। प्रार्थना, निवेदन, माँग, संकल्प, क्रोध, ईर्ष्या, उत्साह, आलस्य, विनोद, उपहास, परिहास, व्यंग्य आदि को भावों के अनुसार प्रभावशाली ढंग से वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया जाना चाहिए।

5. वेग (स्पीड) :- अभिनय के लिए वेग का भी बड़ा महत्व है। समाधि और शोक की अवस्था में स्थिर, वृद्धावस्था और क्लान्ति की अवस्था में मन्द, साधारण सभी अवस्थाओं में स्वाभाविक गति होनी चाहिए। यह वेग मुखमुद्रा, शरीर, भंगिमा, गति, वाणी के समस्त रूपों में व्याप्त होता है।

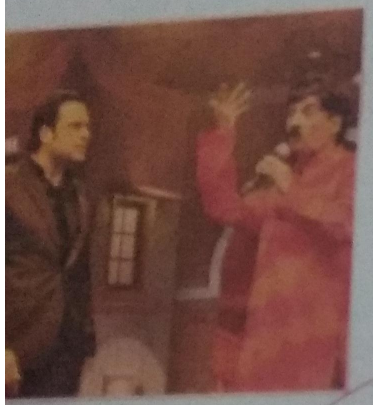

नाट्य कला

नाट्य कला को कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कलाओं के प्रकार अनेक हैं। इनकी संख्याओं के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। 'कामसूत्र' ग्रन्थ के अनुसार कलाओं की संख्या 64 मानी गयी है। कुछ विद्वानों ने कलाओं की संख्या 100 तक बतायी है। मुख्य रूप से कला दो प्रकार की होती है:-

1. ललित कला,
2. उपयोगी कला।

नाटक में कला का विस्तार और प्रसार :-

नाटक के तत्वों में अभिनय को प्रमुख स्थान मिला है। अभिनय और रंग-मंच एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। किसी भी नाटक की सफलता अभिनय की सफलता पर निर्भर है। अभिनय चार प्रकार का माना जाता है - कायिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक।

वाचिक अभिनय वाणी के द्वारा ही सम्भव होता है। वाणी का महत्व इस से भी अधिक बढ़ जाता है कि वह आंगिक अभिनय को और भी अधिक स्पष्ट करती है।

नृत्य एवं नाट्य कला में हाव-भाव का स्थान :-

प्रसिद्ध नाट्याचार्य भरत मुनि ने नाटक में रस की प्रमुखता दी है क्योंकि मैं रस की प्रमुखता दी है दर्शकों में रस निष्पत्ति ही नाटक की सफलता का द्योतक मानी गयी है। प्रत्येक नाटक में कोई न कोई एक प्रमुख रस अवश्य होता है।

काव्य शास्त्र की दृष्टि से रस के अंगों में हाव-भाव को भी एक के अंग रूप में माना है। नृत्य एवं नाट्य कला में गति का स्थान :-

वाणी में उतार-चढ़ाव और एक लय होती है। छन्द शास्त्र में इस लय को ही गति कहा गया है। गति के द्वारा ही वाणी प्रभावोत्पादक बनती है और यह रस के उद्रेक में सहायक होती है। प्राचीनकाल में नाटक काव्य में ही अधिकतर

लिखे जाते थे और काव्य की कसौटी छन्द शास्त्र को माना जाता था इस दृष्टि से गति को महत्व की बहुत महत्व मिला हुआ था।

नृत्य एवं नाट्य कला में चरित्र चित्रण का स्थान :-

जैसा कि कहा जा चुका है कि अभिनय नाटक का प्राण होता है। मंच पर अभिनय प्रस्तुत करने वाले कलाकार पात्र कहलाते हैं अर्थात जिस व्यक्ति की अनुकृति के रूप में अभिनेता अभिनय करता है कि वह किस पात्र के रूप में अभिनय कर रहा हैं, उस पात्र का चरित्र किस प्रकार का रहा है, उसके अनुरूप ही अभिनेता को अभिनय करना पाता हैं। नाट्यशास्त्र में इसे ही चरित्र-चित्रण के नाम से जाना जाता है।

नाट्य एवं नाट्यकला में सम्वाद का स्थान :-

सम्वाद वह तत्व हैं, जो नाटक को उपन्यास या वैसी ही दूसरी महाविद्याओं से अलग करता है यों तो उपन्यास और कहानी में भी थोड़े बहुत सम्वाद रखे जाते है लेकिन वहाँ उनकी एक सीमा होती है।

1. सम्वाद छोटे होने चाहिए।
2. सम्वाद की भाषा सरल तथा सहज होनी चाहिए ताकि दर्शक और श्रोता उसे समझ सकें।
3. सम्वाद की भाषा पात्र के अनुरूप ही होनी चाहिए।
4. लम्बे सम्वाद दर्शक और श्रोताओं को ऊबा (बोर कर) देते हैं तथा रसोद्रेक में बाधक होते हैं।

नाटक में कथावस्तु जीवन के विस्तृत भाग से सम्बंधित होती हैं।

1. बहुअंकी नाटक :-

नाटक वस्तुतः रूपक का एक भेद है। रूप का आरोप होने के कारण नाटक को रूपक कहा गया है। अभिनय के समय नट पर दुष्यन्त या राम का आरोप किया गया है। इसलिए उसे रूपक कहते हैं। नट (अभिनेता)

से सम्बंध होने का कारण इसे नाटक कहते हैं। नाटक शब्द 'नट' धातु से बना है। नट धातु का उपयोग अनुकरण के रूप में किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि रंगमंच पर अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया गया लिखित पद्य या गद्य अथवा दोनों की मिश्रित रचना भी नाटक होती है। नाटक के कथावस्तु जीवन के विस्तृत भाग से सम्बंधित होती है। कथावस्तु अनेक अंको में और दृश्यों में धीरे-धीरे विकसित होती है।

2. एकांकी नाटक :- एकांकी शब्द का अर्थ है एक अंक वाला। आजकल हिंदी में इस शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'वॉन एक्ट प्ले' के अर्थ में है। यह नाटक की ही एक रूप है तथा संस्कृत में व्यायोग, भाण, प्रहसन, विथी, नाटिका, गोष्ठी, नाट्य-रासक, उल्लाप, काव्य, प्रकरणिका, हल्लीश, माणिका, अंक आदि एकांकी का विभिन्न रूप हैं, किन्तु वर्तमान एकांकी पाश्चात्य एकांकी की देन है।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने एकांकी के लिए तीन बातें आवश्यक मानी हैं-

1. आकार और समय की लघुता (35 मिनट से 45 मिनट की अवधि)
2. अभिनयशीलता,
3. रंग-संकेतों की स्पष्टता।

एकांकी की विशेषताएं:

एकांकी नाटक की विशेषताएं निम्नलिखित प्रकार से हैं -
प्रमुख घटना से सम्बन्धित एक संवेदना, 2. आधारभूत घटना का सम्बन्ध हमारे जीवन से, 3. सकुलित लक्ष्य, 4. स्वरूप की लघुता, 5. अभिनेयता, 6. कम पात्र, 7. वस्तु तथा प्रभाव का ऐक्य शिल्प की दृष्टि से एकांकी तत्व अग्रलिखित माने गये हैं- कथावस्तु, प्रभाव-ऐक्य, दृश्य विधान, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा-शैली अभिव्यक्ति माने गये हैं - कथावस्तु प्रभाव-ऐक्य, दृश्य विधान, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली अभिव्यक्ति तथा

अभिनेयता।

आशुरचित नाटक :
रंगमंच के क्षेत्र में आशुरचित नाटकों का भी अपना महत्व है। आशु का शाब्दिक अर्थ होता है तत्काल, शीघ्र या तुरन्त। इस प्रकार आशुरचित नाटक से आशय ऐसे नाटकों से है, जो प्रस्तुत उद्भुत आवश्यकता की तुरन्त पूर्ति के लिए मंच पर बिना किसी पूर्व लेखन और पूर्व तैयार के प्रस्तुत कर दिया जाए। इसमें मंच निर्देशन और पात्रों के समक्ष स्पष्ट कथानक होता है।
जहाँ तक इसकी उपयोगिता और अवसर का प्रश्न है, वह मंच की आवश्यकता पर निर्भर करता है। आज के व्यस्त क्षणों में मंच कलाकारों के पास इतना समय नहीं होता कि वे दर्शकों की माँग पर किसी नये नाटक की तैयारी अलग समय में कर सकें।

नुक्कड़ नाटक :-
आजकल नाटक जगत में नुक्कड़ नाटक भी पर्याप्त चर्चित है। समाज में बहुचर्चित समस्याओं को लेकर ऐसे नाटकों का सृजन और मंचन होता है। इन समस्याओं से जनमानस को परिचित कराने, जनमानस पर समस्या के समाधान के संकेत प्रस्तुत करने का यह एक प्रभावी माध्यम है। इस प्रकार से तैयार किए हुए नाटक की प्रस्तुति के लिए किसी स्थायी रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए अधिक व्यस्त स्थानों को चुना जाता है। स्थान चयन के उपरान्त साधारण से मंच पर ही इसकी प्रस्तुति और भी अच्छे ढंग से हो जाती है।

University Roll No. ....

KATHAKALI (KERALA)
कथकलि नृत्य (केरल)

कला एंव संगीत शिक्षण में संचार माध्यमों का प्रयोग :-

कला के शिक्षण में निम्नलिखित संचार के माध्यमों का प्रयोग किया जाता है -

1. प्रदर्शन - चॉक, फलेनल बोर्ड, बुलेटिन बोर्ड सूचना, आरेख तथा चित्र।
2. ग्राफिक्स - पुस्तकें, चार्ट, ग्राफ, मानचित्र, पोस्टर्स आदि।
3. त्रिआयामी - मॉडल, नमूने।

संगीत के शिक्षण के लिए निम्नलिखित संचार के माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

1. श्रव्य उपागम - श्रव्य के अन्तर्गत रेडियो, ट्रांजिस्टर टेपरिकार्डर, शिक्षण मशीन।
2. दृश्य उपागम - दृश्य उपागम के अन्तर्गत रेडियो, ट्रांजिस्टर, शिक्षण मशीन।
3. दृश्य-श्रव्य उपागम - फिल्म, दूरदर्शन, वीडियो टेप।

अभिनय के अंग -

अभिनय रंगमंच के लिए महत्वपूर्ण आयाम है। नाट्य विधान व नाट्याचार्य अभिनय के पाँच अंग मानते हैं -

1. मुखमुद्रा,
2. शरीर भंगिमा,
3. गति,
4. वेश,
5. वाणी।

1. मुखमुद्रा - हमारी सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन, हमारी मुखमुद्रा या भाव-भंगिमा है। हम बिना कुछ बोले अपना सिर नीचे, ऊपर, बायें, दायें, इधर-उधर घुमाकर ऊपर उठाकर, नीचे झुकाकर अपनी गर्दन नीचे-ऊपर या दायें बायें करके विभिन्न प्रकार के नैचगलिन पलक या भौंहें चलाकर होंठ को आगे पीछे फैलाकर या सिकोड़कर

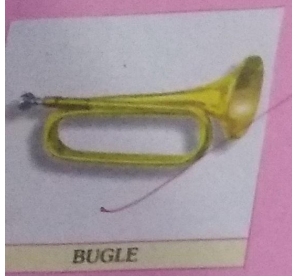

BUGLE

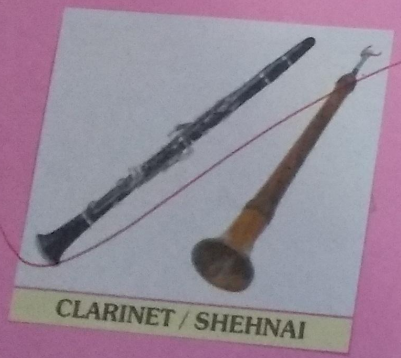

CLARINET / SHEHNAI

University Roll No. .....

Page No. 17

या होठों को दाँतों के नीचे करके या दाँतों से काटकर, गाल फुलाकर या सिकोड़कर विभिन्न मुखमुद्राओं द्वारा स्नेह, क्रोध आदि अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न करते हैं। यह भाव प्रदर्शन कभी संवादों के साथ होते हैं तो भी हो सकते हैं और संवाद के बिना भी।

मुखमुद्रा, शरीर भंगिमा, वाणी, वेग, गति अभिनय

इसी प्रकार गर्दन के ऊपर के विभिन्न अंगों को भाव के अनुसार प्रयुक्त करने को ही आंगिक-भंगिमा या मुखमुद्रा कहते हैं।

2. शरीर भंगिमा :- जिस प्रकार मुखमण्डल के विभिन्न अंगों के विकार लाकर भावों की अभिव्यक्ति की जाती है उसी प्रकार कन्धे उचकाकर, हाथ उठाकर या गिराकर, मुट्ठी तनाकर या खोलकर, हाथ फैलाकर या बांधकर, एक हाथ से या दोनों हाथों से या अंगुली से या अनेक अंगुलियों से संकेत करके या अंगुलियां सिकोड़कर, कमर तिरछी या सीधी करके या मरकाकर, आगे को झुककर पैर उठाकर, घुटने टेककर या अनेक प्रकार से शरीर के अंगों का संचालन करके अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियों में तथा भावों को प्रदर्शन में शारीरिक अंगों से विभिन्न प्रकार के भाव प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

3. गति या टैम्पो :- अभिनय में गति का बड़ा महत्व है। प्रत्येक पात्र की भूमिका में अभिनय करने वाले अभिनेता को विभिन्न गतियों में चलना आवश्यक हो जाता है। चोर या हत्यारा दबे पाँव पंजों के बल पर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चलता है कि विदूषक हास्यपद गति से टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। गति के अन्तर्गत ही भूमिका के पद और इसकी मर्यादा के अनुसार अभिनेता का रंगमंच पर प्रवेश, प्रस्थान, परिक्रमा, ऊपर या मंच के नीचे उतरना होता है।

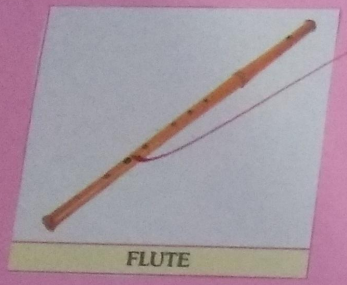

FLUTE

५. वाणी (स्पीच) :- यूरोपीय नाट्यशास्त्रियों का मत है कि अभिनेता को अपनी वाणी का पूरा अधिकार होना चाहिए। यह उसे मंद से तार, कम्पित से सादी स्वर और गम्भीर मन्द से तीव्र गति होकर साथ ही भावानुसार उतार-चढ़ाव भी दिखा सके। उसकी वाणी इतनी सधी हुई होनी चाहिए कि इसे जिस कार्य की अभिव्यक्ति करनी है, वह अर्थ और भाव उसकी वाणी से ही प्रकट की जाये। प्रार्थना, निवेदन, माँग, संकल्प, क्रोध, ईर्ष्या, उत्साह, आलस्य, विनोद, उपहास, परिहास, व्यंग्य आदि को भावों के अनुसार प्रभावशाली ढंग से वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया जाना चाहिए।

६. वेग (स्पीच) :- अभिनय के लिए वेग का भी बड़ा महत्व है। समाधि और शोक की अवस्था में स्थिर, वृद्धावस्था और क्लान्ति की अवस्था में मन्द, साधारण सभी अवस्थाओं में स्वाभाविक गति होनी चाहिए। यह वेग मुखमुद्रा, शरीर, भंगिमा, गति, वाणी के समस्त रूपों में व्यापक होता है।

अभिनय एक कला :

हालांकि अभिनय मूल रूप से प्रकृति का अनुकरण है, लेकिन जब इसमें सौन्दर्य तत्व कल्पनाशीलता के साथ सम्मिलित होते हैं तो कला का रूप ग्रहण करता है। चेतना के विकास के साथ-साथ मानव ने अपनी तर्क-शक्ति का भी विकास किया है और तर्क-शक्ति ने उनकी कल्पना पर आधारित प्रस्तुति को तर्कशील बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप अभिनय में जहाँ एक ओर कल्पनाशीलता समाहित होती जा रही है, वहीं उसे तार्किक एवं आधिकृत बनाने का प्रयास भी निरंतर होता चल रहा है।

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब

DRUM

University Roll No. .....

किसी क्रिया में कल्पनाशीलता, सौन्दर्य, प्रकृति का अनुकरण तात्त्विक रूप से सम्मिलित कर दिया जाता है तब वह कला कहलाती है।

अभिनय सम्प्रेषण की कला :-

चूँकि मनुष्य ने अपने आदिकाल से ही स्वयं को एक सामूहिक प्राणी के रूप में विकसित किया है, अतः पारस्परिक निर्भरता उसके अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है। परिणामस्वरूप पारस्परिक सम्प्रेषण भी उतना ही आवश्यक है। चेतना के अविकसित रूप से पूर्व जब किसी संगठित भाषा का चलन प्रारम्भ नहीं हो पाया था तो वह प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से स्वयं को समाज के सम्मुख अभिव्यक्त करता था। यद्यपि यह अभिव्यक्ति मूल रूप से इसकी दैनिक आवश्यकताओं पर ही आधारित होती थी।

भात खण्डे नोतेशन व्यवस्था

University Roll No. ....

स्वर

वह ध्वनि जो संगत में प्रयोग की जाती है नाद कहलाती है। नाद से ही संगीत की उत्पत्ति होती हैं। नाद के दो रूप माने जाते हैं, एक संगीत उपयोगी नाद, दूसरा वह नाद जो संगीत के लिए उपयुक्त न हो।

संगीत उपयोगी नाद उसको कहते हैं, जिसमें नियमित आंदोलन का संचार हो और स्थिरता बनी रहती हैं उसे स्वर की उत्पत्ति होती है। विभिन्न स्वरों की माला गूंथने पर संगीत बनता है। अतः वह संगीत उपयोगी नाद उसमें जिसमें नियमित आंदोलनों की स्थिरता बनी रहे, और जो सुनने में कानों को मधुर लगे, स्वर कहलाता है

स्वरों के रूप :-
स्वरों के दो रूप होते हैं
1. शुद्ध स्वर
2. विकृत स्वर

सप्तक मन्द्र, मध्य एंव तार :-
सात स्वरों के समूह को क्रम में गाने अथवा बजाने को सप्तक कहते हैं जैसे - स रे ग म प ध नी, ये सात स्वर एक सप्तक को दर्शाते हैं। सप्तक में इन सातों स्वरों को एक के बाद एक करके बताया जाता है।

आरोह, अवरोह, पकड़ :-
आरोह :-
गाने अथवा बजाने में स्वरों को एक विशिष्ट रूप में प्रयोग किया जाता है तभी किसी धुन की प्राप्ति होती है। क्रमानुसार यदि स्वरों को नीचे से ऊपर की ओर बताया जाए तो उसको आरोह कहते हैं जैसे :- स रे ग म प ध नी

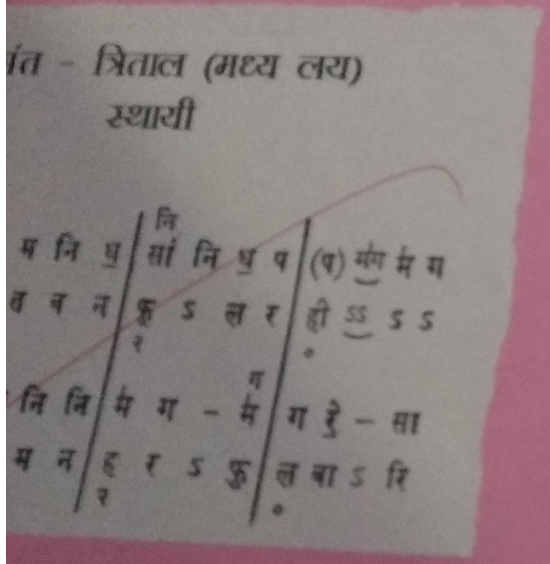

ंत - त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी

म नि ध	नि सां नि ध प	(प) मंग मं ग
व न न	फु S ल र	ही SS S S
नि नि	मं ग - ग मं	ग रे - सा
म न	ह र S फु	ल वा S रि

University Roll No. ....

गायन और गायन के प्रकार

गायन एक ऐसी क्रिया हैं जिससे स्वर की सहायता से संगीतमय ध्वनि उत्पन्न की जाती हैं और जो सामान्य बोलचाल की गुणवत्ता को राग और ताल दोनों के प्रयोग से बढ़ाती है। जो व्यक्ति गाता हैं उसे गायक या गवैया कहा जाता है। गायक गीत गाते है जो एकल ही सकते हैं यानी बिना किसी और साज या संगीत के साथ या फिर संगीतज्ञों व साज से लेकर पूरे आर्केस्ट्रा या बड़े बैंड के साथ गाए जा सकते हैं। गायन अक्सर अन्य संगीतकारों के समूह में किया जाता हैं, जैसे भिन्न प्रकार के स्वरों वाले कई गायकों के साथ या विभिन्न प्रकार के साज बजाने वाले कलाकारों के साथ जैसे किसी रॉक समूह या बैरॉक संगठन के साथ। हर वह व्यक्ति जो बोल सकता हैं वह गा भी सकता हैं, क्योंकि गायन बोली का ही एक परिष्कृत रूप हैं।

संगत शास्त्र परिचय

भारतीय संगीत :-

भारतीय संगीत से सम्पूर्ण भारतवर्ष की गणना वादन कला का बोध होता हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत की 2 प्रणालियाँ हैं। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति अथवा कर्नाटक संगीत प्रणाली और दूसरी हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली, जो कि समुचे उत्तर भारतवर्ष में प्रचलित हैं। दक्षिण भारतीय संगीत कलात्मक खूबियों से परिपूर्ण हैं और इसमें जनता जनार्दन को आकर्षित करने की अपेक्षा समाज में संगीत कला की मौलिक विधियों द्वारा कलात्मक संस्कार करने की क्षमता है।

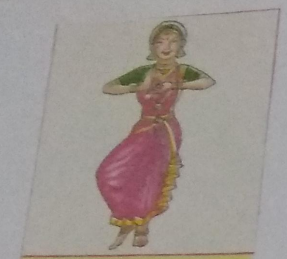

ORIYA DANCE
उड़िया नृत्य

NIPURI DANCE (MANIPUR)
णिपुरी-नृत्य (मणिपुर)

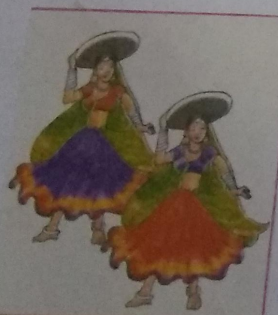

RAJASTHAN FOLK DANCE
राजस्थान लोक-नृत्य

University Roll No. .....

भारतीय नृत्य

नृत्य भी मानवीय अभिव्यक्तियों का एक समन्वय प्रदर्शन है। यह एक सार्वभौम कला है, जिसका जन्म मानव जीवन के साथ हुआ है। बालक जन्म लेते ही रोकर अपने हाथ पैर मार कर अपनी मानव अभिव्यक्ति करता है कि वह भूखा है - इन्हीं आंगिक क्रियाओं से नृत्य की उत्पत्ति हुई है। यह कला देवी-देवताओं, वैश्य दानवों, मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों को अति प्रिय है। भारतीय पुराणों में यह दुष्ट नाशक एवं ईश्वर प्राप्ति का साधन मानी गई है। समुद्र मंथन के पश्चात् जब दुष्ट राक्षसों को अमरत्व प्राप्त होने का संकट उत्पन्न हुआ तब भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर अपने लास्य नृत्य के द्वारा ही तीनों लोकों को राक्षसों से मुक्ति दिलाई थी।

भारतीय नृत्य के प्रकार :-

भारतीय नृत्य उतने ही विविध हैं जितनी हमारी संस्कृति, लेकिन इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है - शास्त्रीय नृत्य तथा लोकनृत्य। हाल ही में बॉलीवुड नृत्य की एक नई शैली लोकप्रिय होती जा रही है जो भारतीय सिनेमा पर आधारित है। इसमें भारतीय शास्त्रीय, भारतीय लोक और पाश्चात्य लोक का समन्वय देखने को मिलता है।

भारतीय नृत्य का इतिहास:-

नृत्य का प्राचीनतम ग्रंथ भरत मुनि का नाट्यशास्त्र है। लेकिन इसके उल्लेख वेदों में भी मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि प्रागैतिहासिक काल में नृत्य की खोज हो चुकी थी। इतिहास की दृष्टि में सबसे पहले उपलब्ध साक्ष्य मुद्राओं में प्राप्त आदिमानव के और चित्रों तथा हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाईयों से प्राप्त मूर्तियाँ हैं, जिनके संबंध में पुरातत्वेत्ता नर्तकी होने का दावा करते हैं।

OLK DANCE
ोक-नृत्य

DHANKOOT (MEGHALAYA)
धानकूट-नृत्य (मेघालय)

University Roll No. .....

Page No. 23

शास्त्रीय नृत्य

भारत में नृत्य की जड़े प्राचीन परंपराओं में हैं। इस विशाल उपमहाद्वीप में नृत्यों की विभिन्न विधाओं ने जन्म लिया है। प्रत्येक विधा ने विशिष्ट समय व वातावरण के प्रभाव से आकर लिया है। राष्ट्र शास्त्रीय नृत्य की कई विधाओं को पेश करता है, जिनमें से प्रत्येक का संबंध देश के विभिन्न भागों से है। प्रत्येक विधा किसी विशिष्ट क्षेत्र अथवा व्यक्तियों के समूह के लोकाचार का प्रतिनिधित्व करती है। भारत के कुछ प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य है।

भरतनाट्यम :-

इस नृत्य शैली की खास विशेषताएं, नायक-नायिका प्रसंग पर आधारित पदम अथवा कविताएं हैं। भरतनाट्यम, भारत के प्रसिद्ध नृत्यों में से एक है तथा इसका संबंध दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य से है। यह नाम 'भरत' शब्द से लिया गया तथा इसका संबंध नृत्यशास्त्र से है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा, हिंदू देवकुल के महान त्रिदेवों में से प्रथम, नाट्य शास्त्र अथवा नृत्य विज्ञान हैं। अतः इसका नाम भरत नाट्यम हुआ। भरतनाट्यम इस नृत्य शैली की खास विशेषताएं, नायक-नायिका प्रसंग पर आधारित पदम अथवा कविताएं हैं।

कथकली :-

कथकली केरल के दक्षिण-पश्चिमी राज्य का एक एक समृद्ध और कलात्मक चलने वाला नृत्य कथकली यहां की परम्परा है। कथकली का अर्थ है एक कथा या एक नृत्य नाटिका। कथा का अर्थ है कहानी, यहां अभिनेता रामायण और महाभारत जैसे महाग्रंथों और पुराणों से लिए गए चरित्रों का अभिनय करते हैं। यह अत्यंत रंगबिरंगा नृत्य है। इसके नर्तक उभरे हुए परिधानों, फूलदार दुपट्टों, आभूषणों और मुकुट से सजे होते हैं।